|| श्रीहरिः ||

वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

|| गीता पढ़ें, पढ़ायें, जीवन में लायें ||

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 18: मोक्षसंन्यासयोग

4/6 (श्लोक 40-50), रविवार, 22 जून 2025

विवेचक: गीता विदूषी सौ वंदना जी वर्णेकर

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/vreks5I25aA

स्वधर्म का पालन ही श्रेष्ठ कर्म

श्री मधुराष्टक, सद्गुणों की साधना की कामना, श्री हनुमान चालीसा पाठ तथा दीप प्रज्वलन के साथ ही इस कलशाध्याय के मध्यांश का शुभारम्भ हुआ।

श्रीमद्भगवद्गीता का यह अन्तिम अध्याय है। आज एकादशी का परम पवित्र दिवस है। आज के इस पावन दिवस के उपलक्ष्य में साक्षात् श्रीभगवान् के मुखारविन्द से प्रवाहित इस धारा में, आज हम अपना तन-मन प्रक्षालित कर लें। सन्त ज्ञानेश्वर महाराज जी इस अध्याय को कलश अध्याय कहते हैं।

इस समय महाराष्ट्र में पण्ढरपुर की वारी(यात्रा)चल रही है जिसमें लाखों भाविक(श्रद्धालु) भगवान् पाण्डुरङ्ग जी के दर्शन करने जाते हैं। भीड़ के कारण अनेक भक्त भगवान् पाण्डुरङ्ग के चरणों तक नहीं पहुँच पाते हैं किन्तु यदि मन्दिर के कलश का दर्शन हो गया तो भी भगवान् पण्ढरीनाथ के दर्शन का पुण्य प्राप्त होता है।

श्रीभगवान् ने यह गीत प्रत्यक्ष समराङ्गण में अपने मुख से गाया। इसके पीछे उनका हेतु अर्जुन की दुविधा का निवारण कर कर्तव्यपथ पर लाने का था। यहाँ अर्जुन, हमारे प्रतिनिधि हैं। हम उनकी पंक्ति में दूर कहीं बैठे हुये हैं। सबकी इच्छा है कि ईश्वर द्वारा परोसा गया यह ज्ञान हम तक पहुँचे।

सन्त ज्ञानेश्वर महाराज जी कहते हैं-

सहजें ब्रह्मरसाचें पारणें। केलें अर्जुनालागीं नारायणें।
कीं तेचि अवसरीं पाहुणे। पातलों आम्ही।।

श्रीभगवान् ने ब्रह्मरस का पान अर्जुन को कराया है, यह ब्रह्मानन्द अर्जुन को परोसा। श्री ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं कि मैं भी वहाँ बैठ गया। मेरी थाली बहुत दूर थी परन्तु ईश्वर वहाँ तक आये।

जिस दिन किसी समर्थ व्यक्ति के घर में भोजन का समारम्भ होता है, उस दिन उसके घर प्रत्येक व्यक्ति को वो सारे व्यञ्जन

परोसे जाते हैं जो वहाँ पके हैं। इसी प्रकार सन्त ज्ञानेश्वर महाराज भी वहाँ बैठ गये और उन्हें भी ब्रह्मरस चखने का अवसर मिला।

हमारे जीवन में परम आनन्द की प्राप्ति के हेतु, जीवन के समस्त विकारों से हमें मुक्त करने हेतु यह गीत श्रीभगवान् ने गाया। सम्पूर्ण गीत गाते गाते जब श्रीभगवान् इस समापन अध्याय में आये तब उन्होंने अर्जुन को पुनः त्रिगुणात्मक प्रकृति के तीनों गुणों के सन्दर्भ में बताया।

तीनों गुण अर्थात् सत्त्व, रज तथा तमोगुण ।

इन तीनों गुणों के संयोग के कारण यह प्रकृति किस प्रकार विविध प्रतीत होती है?
प्रत्येक व्यक्ति दूसरे से भिन्न होता है क्योंकि यह मानसिक बन्धन है।

गुण का अर्थ है रस्सी जो हमें बाँधती है।

सत्व- ज्ञान का प्रकाश है।

रज- कार्यशीलता का प्रतीक है।

तम- कार्य शून्यता या जड़त्व

किन्तु ये तीनों गुण प्रत्येक कण में पाये जाते हैं।

अर्जुन ने त्याग को समझने हेतु प्रश्न पूछा किन्तु श्रीभगवान् ने केवल त्याग ही सात्विक, राजसिक अथवा तामसिक नहीं होता, यह बताते हुये आगे ज्ञान, कर्म, कर्ता, धृति, बुद्धि तथा सुख - इन सातों को तीनों श्रेणियों के बाँटते हुये एक नवीन दृष्टिकोण से अवगत कराया।

जब हम सृष्टि को देखते हैं तो अन्तरङ्ग में नहीं झाँकते हैं। श्रीभगवान् स्वयं को देखने का दर्पण दिखाते हैं।

प्रत्येक दृष्टि को पहचानना, प्रत्येक व्यक्ति को पहचानना, किसमें कौन-सा गुण प्रभावी है यह जानना तथा यह सब जानते हुये इन गुणों से अतीत जो परमात्मा है इनसे नित्य सम्बन्ध कैसे जोड़ना है, यह बताने वाला यह श्रीमद्भगवद्गीता का ज्ञान अपने समापन अध्याय की दिशा में आ चुका है।
श्रीभगवान् कहते हैं कि यह समस्त सृष्टि इन तीनों गुणों से मण्डित है।ये गुण ही सभी जीवों को प्रकृति से बाँधते हैं इसलिये श्रीभगवान् अगले श्लोक में कहते हैं -

18.40

न तदस्ति पृथिव्यां(म्) वा, दिवि देवेषु वा पुनः।
सत्त्वं(म्) प्रकृतिजैर्मुक्तं(म्), यदेभिः(स्) स्यात्त्रिभिर्गुणैः॥18.40॥

पृथ्वी में या स्वर्ग में अथवा देवताओं में तथा इनके सिवाय और कहीं भी वह (ऐसी कोई) वस्तु नहीं है, जो प्रकृति से उत्पन्न इन तीनों गुणों से रहित हो।

विवेचन- इसके पहले के श्लोक में श्रीभगवान् ने यह भी बता दिया कि सुख कैसे तीन प्रकार के होते हैं। प्रत्येक मनुष्य को सुख की कामना होती है किन्तु इस सुख के पीछे दौड़ते-दौड़ते राजसिक सुख अन्त में दुःख देता है।

तामसिक सुख मनुष्य को गिराता है - निद्रा, आलस्य, प्रमाद।

यदग्रे चानुबन्धे च सुखं मोहनमात्मनः।
निद्रालस्यप्रमादोत्थं तत्तामसमुदाहृतम्।।18.39।।

यदि मनुष्य को जीवन का उन्नयन करना है तो सर्वप्रथम तामसिक गुणों से ऊपर उठकर राजसिक गुणों में स्थापित होना पड़ेगा अर्थात् कुछ न कुछ कार्य करना पड़ेगा। तत्पश्चात् सत्वगुण।

सत्त्वाधिष्टी रजोगुण

रजोगुण जिस व्यक्ति में होगा उसके कार्य भी अद्भुत होते जायेंगे, सृष्टि के कल्याण के लिये होते जायेंगे।

श्रीभगवान् का जो मन्त्र है-.

सर्वभूतहिते रताः

यह मन्त्र उस व्यक्ति के जीवन में प्रतिबिम्बित होगा अतः श्रीभगवान् कहते हैं कि एक बात समझ लो अर्जुन, यह सृष्टि जो गुण दिखाती है उसके मिश्रण प्रमाण तथा संयोग भिन्न-भिन्न हैं किन्तु वे गुण प्रत्येक कण में हैं।

परमाणु (Atom) में भी यही गुण हैं। इसके केन्द्र में नाभिक (Nucleus) होता है जिसमें प्राणु (Proton), आवेशहीन कण (Neutron) तथा विद्युदणु (electron) होते हैं। इनमें विद्युदणु अपनी कक्षा में विचरण करते रहते हैं जो रजोगुण के प्रतीक हैं। प्राणु सत्वगुण का प्रतीक है तथा आवेशहीन कण तमोगुण का प्रतीक है।

प्रत्येक परमाणु में ये गुण होंगे यह निश्चित है।

इस पृथ्वी अथवा् स्वर्गलोक में, देवताओं में अथवा् किसी भी सत्त्व में ये तीनों गुण अवश्य होते हैं। कोई पदार्थ ऐसा नहीं है जिसमें ये गुण न हों। प्रकृति से उत्पन्न हुये प्रत्येक जीव में प्रकृति के ये तीनों गुण अवश्य होंगे। इसलिये त्याग, ज्ञान, कर्म, कर्ता, बुद्धि, धृति तथा सुख- सात्विक, राजसिक तथा तामसिक होंगे। श्रीभगवान् हमें दर्पण दिखाकर स्वयं को पहचानने की दृष्टि देते हैं। साथ ही हमसे जो व्यक्ति जुड़े हैं, समाज जुड़ा है, सृष्टि जुड़ी है उसे समझने का दृष्टिकोण प्रदान करते हैं।

हमने सत्रहवें अध्याय में देखा है कि आहार भी सात्विक, राजसिक तथा तामसिक होता है। श्रीभगवान् पुनः इन बातों को सार रूप में बताते हैं तथा कहते हैं कि इन तीनों गुणों के कारण किस प्रकार से यह पृथ्वी तथा हर व्यक्ति भिन्न है। यह सृष्टि स्थूल क्रम (broad spectrum) में चार वर्णों में विभाजित है। वास्तव में प्रत्येक व्यक्ति में यह तीनों गुण हैं किन्तु व्यापक रूप में जिस गुण का अधिक प्रभाव दिखेगा जैसे किसी व्यक्ति में यदि सत्व गुण अधिक हैं तो हम उसे सात्त्विक व्यक्ति कहते हैं। इसके पश्चात् भी उसमें रजोगुण तथा तमोगुण भी होंगे क्योंकि वे आवश्यक हैं।

कोई व्यक्ति कार्यशील है तो उसमें रजोगुण होगा किन्तु उसमें सत्त्वगुण तथा तमोगुण भी होंगे। उदाहरणार्थ- श्री रामायण में तीन पात्र हैं- रावण, विभीषण तथा कुम्भकर्ण ।

ये तीनों भाई थे। रावण रजोगुणी था। वह यश की कामना रखता था। सीता माता का हरण भी रावण ने ही किया था। नवग्रहों को भी अपना बन्धक बनाकर रखा था।यह व्यक्ति अपने यश हेतु दूसरों पर अन्याय करता था।

कुम्भकर्ण सदैव निद्रालीन, मदिरापान करने वाला तमोगुणी व्यक्ति था।

विभीषण श्रीराम भक्त थे, सत्वगुण से युक्त थे तथा उनका मन भगवद् भक्ति से ओत-प्रोत रहता था। वे अपने भ्राता को परामर्श देते हैं कि आप सीता माता को लौटा दीजिये।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति भिन्न स्वभाव के तथा तीनों गुणों के संयोग से उनका स्वभाव बनता है। उनके कर्म अपने स्वाभाविक गुणों के कारण होते हैं। इसलिये सृष्टि चार वर्णों में विभाजित की जाती है।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र ।

यहाँ यह बात हमें समझनी पड़ेगी कि शूद्र यहाँ क्षुद्र (छोटा) नहीं है। उसे हल्का प्रतीत नहीं करना है।

शूद्र का अर्थ है जो तन्त्रोपजीवी है, कलोपजीवी है। अपनी कला प्रदर्शित करते हुये जो अपना निर्वाह करता है।

18.41

ब्राह्मणक्षत्रियविशां(म्), शूद्राणां(ञ्) च परन्तप।
कर्माणि प्रविभक्तानि, स्वभावप्रभवैर्गुणैः॥18.41॥

हे परंतप! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के कर्म स्वभाव से उत्पन्न हुए तीनों गुणों के द्वारा विभक्त किये गये हैं।

विवेचन- हमारी सृष्टि चार वर्णों में विभाजित की गई है। हमारी सनातन धारा जिसके प्रवक्ता स्वयं श्रीनारायण हैं, वह सोलह स्तम्भों पर निर्मित है ।

वे सोलह स्तम्भ हैं-

चार पुरुषार्थ- धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष।

चार वर्ण- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र।

चार आश्रम- ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास।

चार साधना मार्ग- ज्ञान, योग, कर्म, भक्ति ।

अपनी-अपनी रुचि तथा क्षमतानुसार हम साधना मार्ग का चयन करते हैं। कल योग दिवस मनाया गया। अष्टाङ्ग योग का मार्ग लेते हुये मनुष्य उस परमतत्त्व की प्राप्ति हेतु प्रयास करता है। उस परमात्मा के साथ नित्य सम्बन्ध कैसा है। जगत्,जीव तथा जगदीश्वर का परस्पर सम्बन्ध क्या है-यह जानना। उस सम्बन्ध तक पहुँचना तथा परमात्मा से अन्तरङ्ग एकाकारिता प्राप्त करना, यह मनुष्य जीवन का अन्तिम गन्तव्य है।

अपना-अपना कर्तव्य करते हुये यह कार्य हो सकता है।

उस कर्म को ईश्वर को अर्पण करना। ईश्वरार्पण बुद्धि से कार्य करना कर्मयोग हो गया।

ईश्वर को कार्य अर्पण करने से ईश्वर के साथ नित्य सम्बन्ध जुड़ेगा। कुछ न कुछ ज्ञान प्राप्त होगा। हम जिसके साथ रहते हैं उसे जानने लगते हैं।

ज्ञान, कर्म फिर भक्ति हमारे हृदय में आयेगी। भक्ति का अर्थ है अखण्ड प्रेम की धारा। ये अखण्ड प्रेम की धारा जब ईश्वर के साथ निरन्तर बहने लगेगी तो उसके बाद ही उनके साथ हमें परमयोग की प्राप्ति होगी।

परमयोग के लक्ष्य तक पहुँचना है किन्तु अपने-अपने कर्मों को करते हुये। यहाँ अर्जुन को यही बात समझाना है क्योंकि यहाँ वे

अपना कर्तव्य कर्म छोड़ना चाहते हैं। अर्जुन क्षत्रिय हैं। युद्ध ही उनका कर्म है। वे अपना क्षत्रिय धर्म छोड़ना चाहते हैं।

इसी प्रकार हम भी जीवन में बहुत सारे कर्म नहीं करना चाहते हैं। हमें उसमें रूचि नहीं आती है किन्तु श्रीभगवान् बताते हैं कि अपना-अपना कर्म कैसे करना चाहिये। फिर परमात्मा के साथ अनुसन्धान कैसे बनाना चाहिये-यह श्रीमद्भगवद्गीता हमें सिखाती है।

हे अर्जुन! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र इन चारों वर्णों में स्वभावानुसार कर्म प्राप्त होते हैं।

निरन्तर कर्म करते-करते उन कर्मों का जो परिणाम हमारे ऊपर होता है, वह हमारा स्वभाव बन जाता है। गुणों के मिश्रण तथा क्षमता से स्वभाव बनता है। ज्ञान की क्षमता रखने वाला ब्राह्मण कहलाता है। जिसकी बुद्धि कुछ न कुछ ज्ञान प्राप्त करने हेतु सदा लालायित रहती है, वह ब्राह्मण हो जाता है।

जो शौर्य की बात करे, जिसमें तेज होता है, बल होता है, वह क्षत्रिय कहलाता है।

व्यापार की बात करे-कृषि, गोरक्षा तथा व्यापार करता है, वह वैश्य कहलाता है।

जो तन्त्रोपजीवी अथवा् कलोपजीवी व्यक्ति है, वह शूद्र कहलाता है। श्रमिक इसी श्रेणी में आते हैं। जिसका जैसा स्वभाव होगा, जिसमें तीनों गुणों के मिश्रण जिस प्रकार के होंगे, उसका वही वर्ण होगा।
यह मात्र अनुवांशिक नहीं होता है। दो बातें हैं:- जो इसे निर्धारित करती हैं-

अनुवांशिकता (Heredity) तथा
वातावरण का परिणाम (Effect of environment)

मनुष्य जिस वातावरण में जन्म लेता है, उस वातावरण का प्रभाव उसकी बुद्धि तथा मन पर होता है।

अनुवांशिकता हमें गुणसूत्रों से प्राप्त होती है अतः स्वभाव थोड़ा जन्म से भी निर्मित होता है। इन दोनों के कारण जो स्वभाव बनता है उसी के कारण चार प्रकार के वर्णों का निर्माण होता है तथा उनके भिन्न-भिन्न कर्म हैं।

ब्राह्मण अर्थात् ज्ञान-शक्ति । हम संसार में कहीं भी जायेंगे, ज्ञान की आराधना में लगे हुये लोग हमें मिल जायेंगे।

कोरोना महामारी के काल में उसका टीका (vaccine) ढूँढने वाले कई वैज्ञानिक थे जो सृष्टि के कल्याण हेतु कार्यरत थे। लोक कल्याण के हेतु जो ज्ञान की आराधना करता है, वही ब्राह्मण वर्ण है।

हमें यह नहीं सोचना चाहिये कि ईश्वर ने किसी को भी जाति से नीचा या ऊँचा दिखाया है। यह तो मनुष्य निर्मित है। सृष्टि के सञ्चालन हेतु ये चारों कर्म आवश्यक हैं।

प्रथम है बुद्धि की आराधना।

दूसरी है शौर्य-शक्ति। देश की रक्षा करने वाले सैनिक भीषण युद्ध करके अपना कर्तव्य निभा रहे हैं। यही वीरता अर्जुन में थी। मात्र देश की सीमा पर नहीं प्रत्येक स्थान पर असामाजिक तत्वों का परिमार्जन करने हेतु इन सैनिकों की आवश्यकता होती है।

तीसरी है वित्त शक्ति अर्थात् धन । हमारा देश विश्व गुरु बनने की ओर अग्रसर है तथा इस समय यह चौथे स्थान पर है। भारत का प्रवास कठिन रहा है। यह वित्त शक्ति भी राष्ट्र हेतु अति आवश्यक है। राष्ट्र सम्पन्न होना चाहिये।

राष्ट्र शौर्य से मण्डित होना चाहिये तथा आर्थिक रूप से भी सशक्त होना चाहिये और इसके साथ ही श्रमिक शक्ति भी होनी

आवश्यक है। इनके बिना कार्य होना असम्भव है। मात्र पहली तीन शक्तियों के आधार पर देश का सञ्चालन असम्भव होगा।

उदाहरणार्थ, वित्त की सहायता से एक कारखाना स्थापित किया गया। वहाँ मशीनें लगायीं गयीं। सारे अधिकारी एवम् कर्मचारी भी रख लिये गये किन्तु चतुर्थ श्रेणी के श्रमिक नहीं हों तो वह कारखाना नहीं चल पायेगा।

इसी प्रकार हमारे व्यक्तिगत जीवन में ये चार शक्तियाँ आवश्यक हैं।

ब्रह्माण्डी ते पिण्डी

हम ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं, हम शौर्य शक्ति को प्राप्त करना चाहते हैं। इसके लिये हम योग करते हैं। हम सम्पन्न भी होना चाहते हैं तथा चौथा है सेवा या श्रम करना कभी-कभी हमें घर के वृद्धों की सेवा करनी पड़ती है।

अतः प्रत्येक व्यक्ति में ये चारों वर्ण निहित हैं। इसी प्रकार प्रत्येक संस्था में, राष्ट्र में-प्रत्येक स्थान पर इन चारों वर्णों की आवश्यकता है। जिसकी जो क्षमता है उसके अनुसार अपने गुणों को समझ लेना चाहिये।

उसी के अनुसार हमें कार्य का चयन करना चाहिये। ईश्वर हमारी योग्यता की परीक्षा लेते हैं। इसके लिये एक सुन्दर वाक्य है-

To exist is to change.
To change is to grow.
To grow is to recreate
yourself endlessly.

जीवन जीने हेतु स्वयं में परिवर्तन लाना अति आवश्यक है। परिवर्तन का अर्थ है उन्नयन करना। सकारात्मक परिवर्तन करते हुये जीवन में उन्नति करते रहना चाहिये।

तामसिकता से राजसिकता, राजसिकता से सात्विकता ।

इस प्रकार से मनुष्य का प्रवास होना चाहिये। आगे के श्लोक में श्रीभगवान् इसके लक्षणों के बारे में बताते हैं।

18.42

शमो दमस्तपः(श्) शौचं(ङ्), क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानंविज्ञानमास्तिक्यं(म्), ब्रह्मकर्म स्वभावजम्॥18.42॥

मन का निग्रह करना, इन्द्रियों को वश में करना; धर्मपालन के लिये कष्ट सहना; बाहर-भीतर से शुद्ध रहना; दूसरों के अपराध को क्षमा करना; शरीर, मन आदि में सरलता रखना; वेद, शास्त्र आदि का ज्ञान होना; यज्ञविधि को अनुभव में लाना; और परमात्मा, वेद आदि में आस्तिक भाव रखना - (ये सबके सब ब्राह्मण के स्वाभाविक कर्म हैं।

विवेचन - सात्विक व्यक्ति जो ब्रह्मचारी है (यहाँ ब्रह्मचारी का अर्थ अविवाहित व्यक्ति से ही नहीं है) अर्थात् ब्रह्म का अनुभव करना चाहता है, ज्ञान चाहता है, उसका स्वभाव शम, दम, तप तथा शौच का पालन करने वाला होता है।

शम - मन को शान्त करना, अन्तःकरण का निग्रह करना। इसके बाद ही हम ज्ञान के मार्ग पर चल सकते हैं।

दम - इन्द्रियाँ मन को विचलित करती हैं। ये हमें अपने-अपने विषयों की ओर आकर्षित करती हैं। कुछ महान् करने हेतु हमें अपनी इन्द्रियों का दमन करना आवश्यक है।
उदाहरणार्थ, परीक्षा के समय यदि क्रिकेट का मैच चल रहा हो तो विद्यार्थी का मन मैच की ओर ही जायेगा। यहाँ उसे इन्द्रियों का दमन करना ही पड़ेगा अन्यथा वह अध्ययन नहीं कर पायेगा।
मन को विचलित करने की अनेक वस्तुएँ संसार में विद्यमान हैं।

तप- कोई न कोई कष्ट करते रहना। कष्ट करने से स्वयं को न रोकना। कष्ट करने की तैयारी करना।
विश्व का कल्याण करना।

ऐसा सारे सन्त महात्मा कहते हैं कि विश्व कल्याण हेतु सारे कष्ट सहते हुये चलना चाहिये।

यक्ष ने महाराज युधिष्ठिर से सौ प्रश्न पूछे थे जो कि महाभारत में एक सुन्दर प्रसङ्ग है। ये प्रश्न हमें जीवन में दिशा दिखाते हैं।

इन प्रश्नों में 'तप क्या है?' इस प्रश्न का उत्तर धर्मराज ने दिया कि स्वधर्म का पालन करते हुये अपने शरीर को कष्ट होता है, यह तप कहलाता है।

तपस्य धर्म वर्तितत्वम

अपने धर्म या कर्तव्य को करते हुये शरीर को होने वाला कष्ट तप कहलाता है।

श्रीभगवान् कहते हैं कि ज्ञान प्राप्ति हेतु भी तप करना पड़ता है।

द्वन्द्व अर्थात् शीत-ऊष्ण, सुख-दुःख दोनों को समान समझना।
हम शीत चाहते हैं, ऊष्ण नहीं चाहते।
सुख चाहते हैं, दुःख नहीं चाहते।
स्तुति चाहते हैं, निन्दा नहीं चाहते।
मान चाहते हैं, अपमान नहीं चाहते।
सुगन्ध चाहते हैं, दुर्गन्ध नहीं चाहते।

इस गुणों को सहन करना तथा इनसे ऊपर उठना, यही तप कहलाता है।

शौच - अन्दर तथा बाह्य पवित्रता।
कुछ वस्तुएँ स्वच्छ होती हैं किन्तु पवित्र नहीं होती हैं।
जल स्वच्छ होता है किन्तु उसे शुद्ध करने हेतु हमें (RO) की आवश्यकता होती है।

शुद्ध वस्तु स्वच्छ होने के पश्चात् पवित्र नहीं होती हैं।

गङ्गाजल पवित्र होता है। इसे शौच कहते हैं।

क्षान्ति - दूसरों के अपराध क्षमा करना अथवा स्वयं की सहनशीलता में वृद्धि करना।

सन्त ज्ञानेश्वर महाराज इसके लिये एक सुन्दर व्याख्या करते हैं। वे कहते हैं सन्त महात्माओं की क्षान्ति अद्भुत होती है। यह उसे ही प्राप्त होगा जिसके पास क्षान्ति होगी।

जब ईसा मसीह को क्रूस पर लटकाया गया तब उन्होंने कहा -

"इन्हें क्षमा करना, ये नहीं जानते कि ये क्या कर रहे हैं?"

प्रत्येक सन्त-महात्मा पर यदि अत्याचार हुआ है तो उन्होंने लोगों को सदैव क्षमा किया है।

सन्त ज्ञानेश्वर का जीवन स्वयं दुःखों से भरा हुआ ही है। उनके पिता ने संन्यास लेकर फिर गुरु की आज्ञा से गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया। उनकी माता ने आळन्दी में सुवर्ण पीम्पळ की प्रदशिक्षा की। तब उनके पिता के गुरु वहाँ आये तथा उन्हें पुत्रवती होने का आर्शीवाद दिया जिसे सुनकर वे रोने लगीं। जब पूछा गया तो पता चला उनके पति उन्हें छोड़कर संन्यास लेने काशी चले गये हैं। उनके लक्षण सुनते ही गुरुदेव ने अनुमान लगा लिया कि यह तो मेरे शिष्य चैतन्य हैं। वे आळन्दी से काशी गये और चैतन्य महाराज को शीघ्रातिशीघ्र आळन्दी जाने की आज्ञा दी। चैतन्य महाराज आये तथा चार दिव्य शिशुओं का जन्म हुआ।

निवृत्ति, ज्ञानदेव, सोपान, मुक्ताई

किन्तु समाज ने उन्हें स्वीकारा नहीं, उन पर अत्याचार किये। उन्हें समस्त सेवाओं से वञ्चित कर दिया गया फिर भी उन्होंने सारे समाज के लिये अद्भुत प्रार्थना की जो संसार में विलक्षण है। इसे पसायदान कहा जाता है।
उस विश्वात्मक परमात्मा से प्रसाद में सारी सृष्टि के कल्याण की कामना की है:-

आतां विश्वात्मकें देवें। येणें वाग्यज्ञें तोषावें।
तोषोनि मज द्यावें। पसायदान हें ||१||

प्रसाद अर्थात पसायदान माँगा।

जब श्री ज्ञानेश्वर महाराज ने ज्ञानेश्वरी का समापन किया तथा सजीवन समाधि ली तब भी सहजता से सबको क्षमा कर दिया।

आगे श्रीभगवान् बताते हैं सहनशीलता तथा आर्जव तथा अन्तःकरण की सरलता, सकारात्मक दृष्टिकोण अर्थात् आस्तिकता।
जो सरलता अर्जुन में है इसे ऋजुता कहते हैं-नम्रता। इन्हीं गुणों के कारण हम आप भी अर्जुन की पङ्क्ति में आकर बैठ गये हैं:-

अहो अर्जुनाचिये पांती | जे परिसणया योग्य होती।
तिहीं कृपा करूनि संतीं | अवधान द्यावें ॥ ६२॥

श्री ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं कि अर्जुन की पङ्क्ति में बैठना है तो है तो उन्हें भी पहचानना पड़ेगा। जिसके भीतर इस ज्ञान का विराम आ गया, उसका अन्तःकरण सरल होगा।

आर्जवम् और आस्तिक्य अर्थात् सकारात्मक दृष्टिकोण वाला मन।

ज्ञानं विज्ञानं एव ब्रह्मकर्म स्वभावज

हे अर्जुन ! ये ब्राह्मण के कर्म हैं। अब क्षत्रिय कैसा होता है? यह आगे देखते हैं।

18.43

शौर्यं(न्) तेजो धृतिर्दाक्ष्यं(म्), युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वरभावश्च, क्षात्रं(ङ्) कर्म स्वभावजम्॥18.43॥

शूरवीरता, तेज, धैर्य, प्रजा के संचालन आदि की विशेष चतुरता, युद्ध में कभी पीठ न दिखाना, दान करना और शासन करने का भाव - (ये सबके सब) क्षत्रिय के स्वाभाविक कर्म है

विवेचन- शौर्य, तेज, धृति, दाक्ष्य- इन गुणों वाला क्षत्रिय होगा।

इन गुणों के मिश्रण का उपयोग अपने राष्ट्र के लिये होना चाहिये। जिस प्रकार हनुमान जी महाराज के बारे में कहते हैं:-

बिद्यावान गुनी अति चातुर।
राम काज करिबे को आतुर ।।

यहाँ विद्या, गुण तथा चातुर्य सभी का राम काज हेतु उपयोग किया जा रहा है। ठीक इसी प्रकार देश के हित में कार्य करने वाले व्यक्ति में साहस, तेज और शौर्य - ये अत्यधिक मात्रा में पाये जाते हैं।

इसके बाद है **धृति**- धैर्य।
दृढ़ इच्छाशक्ति ।
शौर्य तथा धैर्य को एक ही रथ के दो पहिये कहे जाते हैं।

हमने धृति इसके पूर्व भी देखी है तथा यह भी देखा है कि यह सात्विक, राजसिक और तामसिक कैसे होगी।
जो देश के लिये धैर्य रखते हैं, वे किस प्रकार के कार्य करते हैं- यह हमने अभी कुछ दिन पहले देखा। वे धीर जवान थे जो जल, थल तथा वायु सेना के थे उन अधिकारियो में ये गुण पाये जाते हैं। यह थोड़ा वातावरण के अनुसार होता है तथा थोड़ा बहुत अनुवांशिकता के कारण।

मिलिट्री अफसर के घर में जिस बच्चे का जन्म होता है, उनमें इसी वातावरण का प्रभाव होता है।

एक माँ अपना एक बेटा युद्ध में गवाँ चुकी थी, उसने दूसरी बेटा भी सेना को सौंप दिया।

यह कैसी तेजस्विता है?
क्षत्रिय की तेजस्विता।

चारों ओर अत्याचार हो रहा था। इसी बीच में जीजा माता ने जब शिवाजी पेट में थे उनके लिये उन्होंने यही प्रार्थना की कि मुझे ऐसा शिवांश दीजिये जो कि अत्याचारों से इस भूमि की रक्षा करेगा और शिवाजी वैसे ही बने।

पाण्डवों के अज्ञातवास के पश्चात् जब भगवान् श्रीकृष्ण हस्तिनापुर आये तब उन्होंने पाँच गाँव देने की बात दुर्योधन से कही किन्तु दुर्योधन ने बात नहीं मानी और शान्ति वार्ता असफल हो गयी। जब भगवान् श्रीकृष्ण वापस लौटने लगे तब माता कुन्ती ने उन्हें बुलाकर पाण्डवों के लिए सन्देश दिया कि यदि मेरा दूध पिया है तो अपने क्षत्रिय धर्म का पालन करो। अब अपना अधिकार माँगना नहीं अपितु युद्ध करके अपनी तथा मातृ भूमि की रक्षा करना।

श्री गुरुदेव कहते हैं कि यह सुन्दर सन्देश प्रत्येक स्त्री को सुनना चाहिये।

इसके बाद है **दक्षता** (Alertness)। धर्मराज युधिष्ठिर से धर्म का अर्थ एक वाक्य में पूछा गया तो वे बोले दक्षता। हमें सजग रहना पड़ेगा। सभी गतिविधियों को देखना पड़ेगा।

आज हम अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर देखते हैं कि श्रीमद्भगवद्गीता सार्वकालिक, सार्वभौमिक है। आज से तिरपन सौ वर्ष पूर्व भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन के लिये अपने मुख से यह ज्ञानधारा प्रवाहित की थी किन्तु आज भी यह उतनी ही प्रासङ्गिक है।

दक्षता क्षात्रिय गुण है।
अर्जुन शोकाकुल हो गये, भ्रमित हो गये। भगवान् श्रीकृष्ण उन्हें इस दुविधा से बाहर निकाल रहे हैं।

आगे वे बताते हैं **दान** - दूसरों को कुछ देना । सबको देकर समाज को बराबर स्थिति में लाना क्षत्रिय का धर्म है।

राजा का कर्तव्य है कि अपनी प्रजा का ध्यान रखना। यह ईश्वर भाव कहलाता है। प्रजा को अपनी सन्तान के समान समझना।

भगवान् श्रीराम अपनी प्रजा से इसी प्रकार व्यवहार करते थे।

इसी प्रकार शिवाजी महाराज अपनी प्रजा का लालन-पालन करते थे किन्तु आदिल शाह के समक्ष जब झुकने हेतु कहा गया तो वे नहीं झुके। इसके विपरित गोहत्या करने वाले के हाथ काटने का आदेश दे दिया। ऐसी आज्ञा देनी के लिये भी एक क्षत्रियता की आवश्यकता होती है। सिन्धु नदी का जल रोकने हेतु भी धैर्य की आवश्यकता है।

राष्ट्र के कल्याण में यह आवश्यक है। यदि हम विरोध नहीं करेंगे तो एक दिन यह सनातन धर्म नष्ट हो जायेगा।

क्षात्र धर्म को कैसे समझें ?

सिंगापुर में विद्यालयीन शिक्षा के पश्चात् दो वर्ष सेना में रहना आवश्यक होता है। प्रत्येक युवक को दो वर्ष राष्ट्र को समर्पित करने होते हैं। इसे उनके मन में देशप्रेम की भावना जाग्रत होती है।

इसी प्रकार रानी पद्मिनी, तेज व सम्पन्न क्षत्राणी थी।

18.44

कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यं(म्), वैश्यकर्म स्वभावजम्।
परिचर्यात्मकं(ङ्) कर्म, शूद्रस्यापि स्वभावजम्॥18.44॥

खेती करना, गायों की रक्षा करना और व्यापार करना - (ये सबके सब) वैश्य के स्वाभाविक कर्म हैं (तथा) चारों वर्णों की सेवा करना शूद्र का भी स्वाभाविक कर्म है।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं कि कोई रक्षण करेगा, कोई प्रबन्धन करेगा। किसी भी राज्य का कार्य इसी प्रकार चलता है। शौर्य से लोग देश की रक्षा करते हैं तथा ज्ञान की आराधना करके ज्ञान शक्ति देश को सम्पन्न करती है। आज हमारा देश आत्मनिर्भर है। हमारी आत्मनिर्भरता के कारण हमने जो मिसाइलों का निर्माण किया है, वह ज्ञान का प्रतीक है। ज्ञान तथा शौर्य के साथ ही वित्तीय स्थिति में भी सम्पन्न होना आवश्यक है।
क्षत्रिय सीमा का रक्षण करते हैं।
ज्ञान से ज्ञान की आराधना होती है।

वैश्य को राष्ट्र की वित्तीय सम्पन्नता बढ़ाने के विषय में सोचना चाहिये। उन्हें प्रयत्न करना चाहिए कि अधिक से अधिक वस्तुओं का निर्यात कर सके जिससे हमारे देश में सम्पन्नता आये।

श्रीभगवान् अर्जुन के माध्यम से प्रत्येक को समझा रहे हैं कि स्वयं को पहचानो। व्यापार में अपने राष्ट्र को ऊपर उठाना वैश्य का कार्य है। इनके बच्चे भी बचपन से ही इसे समझने लगते हैं। वे भी धन का विनियोग करना सीख जाते हैं।

यह वातावरण तथा अनुवांशिकता के कारण ही होता है।

जो श्रमिक होते हैं वे परिचर्यात्मक कर्म करते हैं तथा सेवा करते हैं। पहले तीनों की सेवा तथा उन्हें आनन्द देना, इनका कार्य है। यह शूद्र का स्वभाव है।

सभी को अपना-अपना कार्य करना चाहिये।
गीताजी भी हमें यही सिखाती हैं कि स्वयं को पहचानो तथा अपने-अपने कर्म में रम जाओ। को उच्चता-नीचता के माध्यम से नहीं देखना चाहिये। यदि परिचर्यात्मक कर्म न हो निर्वाह कठिन है।
अहमदाबाद में जो दुर्घटना हुई उसमें वहाँ के लोगों ने सेवा देकर अपना धर्म निभाया।

इस प्रकार चारों वर्णों के महत्व का वर्णन करते हुये श्रीभगवान् कहते हैं तथा एक अत्यन्त सुन्दर तथा महान आर्शीवाद आगे के श्लोक में देते हैं।

18.45

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः(स्), संसिद्धिं(म्) लभते नरः।
स्वकर्मनिरतः(स्) सिद्धिं(म्), यथा विन्दति तच्छृणु॥18.45॥

अपने-अपने कर्म में प्रीतिपूर्वक लगा हुआ मनुष्य सम्यक् सिद्धि (परमात्मा)को प्राप्त कर लेता है। अपने कर्म में लगा हुआ मनुष्य जिस प्रकार सिद्धि को प्राप्त होता है? उस प्रकार को (तू मुझसे) सुन।

विवेचन- भगवान् वेदव्यासजी रमन शब्द का प्रयोग करते हैं।
हमें जो कर्म अपने कर्तव्य के रूप में प्राप्त हुआ है, गृहिणी का, सैनिक का, अध्यापकों का, डॉक्टर का, खेती करने का, किसान का, इंजीनियर आदि। जो व्यक्ति अपने कर्म में रमता है उसे परम सिद्धि प्राप्त होती है।

सिद्धि दो प्रकार की होती है - एक दक्षता हो जाती है, पुनः-पुनः अपने कर्म को करके, चाहे वह डॉक्टर हो या गृहिणी या अध्यापक। प्रथम बार में नहीं, बार-बार करने से कोई भी व्यक्ति दक्ष हो जाता है अपने कार्य में दक्ष हो जाता है।

श्रीभगवान् कहते हैं कि इस सृष्टि में मनुष्य को कर्म कर्तव्य पूर्ण करने के लिए प्राप्त होते हैं। जब वह अपने कर्म उस परमात्मा के लिए करता है कि उसने मुझे इस कर्म के लिए नियुक्त किया है, उसने मुझे यह दायित्व सौंपा है, इस भावना से बार-बार उस कर्म को करने से वह अपने कर्म में परम सिद्ध हो जाता है।

जो आनन्दित होकर अपने कर्म करता है उसके लिए ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं:-

तया सर्वात्मका ईश्वरा। स्वकर्मकुसुमांची वीरा। पूजा केली होय अपारा। तोषालागीं।।

ईश्वर को कुसुम के समान अपना कर्म सौंपना, ईश्वर की आराधना करने के समान है। यहाँ श्रीभगवान् ने बहुत सुन्दर कर्मयोग बताया है।
मनोवैज्ञानिक अभिरुचि के अनुसार अपने कर्म का चयन करते हुए ईश्वर के साथ कैसे एकाकार होना है श्रीभगवान् आगे बताते हैं।

18.46

यतः(फ्) प्रवृत्तिर्भूतानां(म्), येन सर्वमिदं(न्) ततम्।

स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य, सिद्धिं(म्) विन्दति मानवः॥18.46॥

जिस परमात्मा से सम्पूर्ण प्राणियों की प्रवृत्ति (उत्पत्ति) होती है (और) जिससे यह सम्पूर्ण संसार व्याप्त है, उस परमात्मा का अपने कर्म के द्वारा पूजन करके मनुष्य सिद्धि को प्राप्त हो जाता है।

विवेचन- इस प्रकार से श्रीभगवान् ने सम्पूर्ण सृष्टि को एक सूत्र में पिरो दिया और कहीं भी यह नहीं कहा है कि केवल हिन्दू उपासना पद्धति वाले ही इसका पालन करेंगे या सनातन धर्म की उपासना करेंगे।

समस्त जगत् की उत्पत्ति परमात्मा से हुई, उन्हीं से सृष्टि का निर्माण होता है, सभी चौरासी लाख (84,00,000) योनियों की उत्पत्ति भी परमात्मा से हुई। परमात्मा सम्पूर्ण जगत् के कण-कण में व्याप्त हैं। व्यक्ति में उन्हीं का प्रतिबिम्ब है। वह भगवान् की आराधना कैसे भी करे, भगवान् को भाते हैं परन्तु सिद्धि प्राप्त करने के लिए अपने कर्म कर्तव्य जानकर कर्मों की पूजा करने के समान भगवान् को अर्पण करते हैं।

स्वामी विवेकानन्द जी की शिष्या भगिनी निवेदिता जी एक बार अपने छात्रों को पढ़ा रही थीं तो उनको पूछा गया, "आप कब से पढ़ाती हैं इन छात्रों को" तो उन्होंने कहा, "मैं कहाँ पढ़ा रही हूँ! मैं पढ़ा नहीं रही। मैं तो ईश्वर की पूजा कर रही हूँ। ये छात्र तो उन्होंने मेरे पास भेजे हैं।" अध्यापक का दृष्टिकोण इस प्रकार का होना चाहिए कि अध्यापन के द्वारा ईश्वर की पूजा कर रहे हैं।

एक सैनिक का दृष्टिकोण पूर्ण होना चाहिए कि मेरी मातृभूमि की रक्षा करते हुए उस परमात्मा की आराधना कर रहा हूँ। हर व्यक्ति अगर इस प्रकार से अपने कर्म को यदि पूजा मानकर करता है तो उसमें वह परम सिद्धि प्राप्त हो जाती है क्योंकि वह ईश्वर की पूजा का भाव अपने कर्मों के साथ जोड़कर देखता है।

एक बार अकबर बादशाह ने तानसेन, जो उनकी दरबार के नवरत्नों में से एक थे उनको कहा कि तानसेन आप बहुत सुन्दर गाते हैं। मन मोहित हो जाता है, अह्लादित हो जाता है तो मैं आपके गुरु के दर्शन करना चाहता हूँ। सङ्गीत के गुरु तो उन्होंने कहा कि वो आपके पास तो नहीं आएँगे, आपको जाना पड़ेगा वहाँ, तो बादशाह और तानसेन वहाँ पर गए। एक मन्दिर में प्रातःकाल गुरु जी अपना सुन्दर सङ्गीत का अभ्यास करते सुनायी दिए। वे दोनों दूर से सुनते रहे। ऐसा सुयोग्य सङ्गीत बादशाह ने पहली बार सुना था। उन्होंने तानसेन से पूछा कि "आप ऐसा नहीं गाते हैं, आप अपने गुरु जी जैसा क्यों नहीं गाते हैं?" उन्होंने उत्तर दिया "मैं दिल्ली के ईश्वर के लिए गाता हूँ और वो जगत् के ईश्वर के लिए गाते हैं। वो परमात्मा के लिए गाते हैं तभी उनके अन्दर से सुन्दर आवाज आती है। मैं आपके लिए गाता हूँ तो उसमें भेद रहेगा। जो कर्म परमात्मा को अर्पण होगा वह आराधना के समान होगा।"

इसलिये शिवाजी महाराज कहते थे कि यह राज्य मेरा नहीं, ये जगदम्बा माता का राज्य है, शम्भू महादेव का राज्य है।

ठाकुर रामकृष्ण परमहंस जी कहते थे कि मैं यन्त्र हूँ और यह जगदम्बा यन्त्री हैं। तभी यह यन्त्र चलता है तभी यह सिद्धि प्राप्त होती है। अपना कर्म ही ईश्वर की आराधना बन जाता है।

एक बधिक (ज़ल्लाद) भी अपना फाँसी देने का कर्म राष्ट्र के लिए करता है तो उसका कर्म भी उसे परम सिद्धि तक पहुँचा सकता है।

सन्त ज्ञानेश्वर महाराज जी कहते हैं:-

हें विहित कर्म पांडवा। आपुला अनन्य बोलावा।
आणि हेचि परम सेवा। मज सर्वात्मकाची।।

जो अपना निर्धारित कर्म है, जो जन्म से कर्म प्राप्त हुआ है, उसको आनन्द के साथ करता है, वह उसके द्वारा परमात्मा की सेवा हो जाती है। जिसने इस बात को समझ लिया, वह वही कार्य करेगा। जो परमात्मा उससे चाहता है, उसको करके वह परमात्मा

की प्राप्ति करता है।

18.47

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः(फ्), परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वभावनियतं(ङ्) कर्म, कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम्॥18.47॥

अच्छी तरह अनुष्ठान किये हुए परधर्म से गुणरहित (भी) अपना धर्म श्रेष्ठ है। (कारण कि) स्वभाव से नियत किये हुए स्वधर्मरूप कर्म को करता हुआ (मनुष्य) पाप को प्राप्त नहीं होता।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं कि हे अर्जुन! जन्म से प्राप्त हुए कर्म, जीवनयापन के लिए निर्धारित किए हुए कर्म ही अपने लिए श्रेयस्कर होता है।

अगा जया जें विहित। तें ईश्वराचें मनोगत।
म्हणौनि केलिया निभ्रांत। सांपडेचि तो।।

जो अपना कर्म ईश्वर के दिये कर्तव्य भाव के साथ करते हैं वो परमात्मा को प्राप्त होते हैं।
श्रीभगवान् ने यहाँ तीसरे अध्याय में बोले श्लोक की पुनरावृत्ति की है:-

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।

दूसरों के धर्म, कर्तव्य, जीवन जीने की शैली अच्छी लग सकती है क्योंकि दूर के ढोल सुहावने होते हैं। किन्तु अपने पास में जो कर्म और कर्तव्य प्राप्त होते हैं उनमें बहुत सारी अड़चनें लगती हैं। जैसे डॉक्टर को लगता है इञ्जीनियर का कर्म अच्छा है। इञ्जीनियर को डॉक्टर का, जो सम्मान मिलता है, वह अच्छा लगता है। किसान को लगता है कि वह खेती करने से सारा दिन खतरा है, बाकी लोग आराम से जीवन जी रहे हैं लेकिन सैनिक को देखो वो कैसे मातृभूमि की रक्षा के लिए दिन रात खड़ा रहता है। किस प्रकार से लक्षद्वीप और बर्फ़ की जगह पर रहता है। दूसरों का कर्तव्य दूसरों का जीवन हमेशा अच्छा लगता है।

श्रीभगवान् कहते हैं कि दूसरों का कर्म अच्छा लग सकता है लेकिन स्वयं का जो कर्तव्य है वही श्रेष्ठ है।

अर्जुन! तुम्हारे लिए वही कार्य कल्याणकारी है जो तुम्हें कर्तव्य के रूप में प्राप्त हुआ है। तुम अपने कर्तव्य में अपनों की हानि देख रहे हो इसलिये विगुण लग रहा है। तुम्हें लगता है कि ये पाप है। नहीं, तुम्हें यह कर्तव्य के रूप में प्राप्त हुआ है। बधिक (ज़ल्लाद) को भी फाँसी देने में पाप नहीं लगता है। सैनिक को भी मातृभूमि की रक्षा के लिए कर्म करने का पाप नहीं लगता है। इसलिये अपने स्वधर्म के अनुसार जो कर्तव्य-कर्म प्राप्त हुए हैं उनसे कोई पाप नहीं लगता। यह तुम समझ लो।

श्रीमद्भगवद्गीता हमें दो संदेश देती है:- अपने हर कर्म के साथ ईश्वर की पूजा का भाव जोड़ने का प्रयास करना ही कर्म योग होगा।

दूसरों के जीवन को देखकर जीना बन्द नहीं करना है।
अपने स्वधर्म का पालन करना ही श्रेयस्कर है तभी मनुष्य को अपने जीवन का आनन्द मिलेगा। दूसरों की ओर देखकर नहीं मिलेगा।
आज भी योग्यता परीक्षा (ऐप्टिट्यूड टेस्ट) देखे जाते हैं किसमें कितनी क्षमता (पोटेंशिअल) है।

हमने महाभारत का वह प्रसङ्ग भी सुना है कि किस प्रकार से ब्राह्मण वेश में चारों भाइयों के साथ जाकर अर्जुन ने मत्स्य भेद किया तब राजा द्रुपद को बड़ी चिन्ता हुई कि अर्जुन उनकी कन्या का वरण करेंगे। ये ब्राह्मण लोग कौन हैं? ये तो किस के घर में आश्रय लेकर रहते हैं।

इस दृष्टि से उस ब्राह्मण से द्रौपदी के विवाह हेतु अपने पिता को चिन्तित देख धृष्टद्युम्न ने एक योजना बनाई, जिसमें स्वयंवर में विजयी उस ब्राह्मण की सच्चाई जानने हेतु उसके स्वभावजनित कौशल का परीक्षण किया गया। एक प्रदर्शनी का आयोजन किया गया। जिसमें उस ब्राह्मण सहित, उसके समस्त भ्राताओं को आमन्त्रित किया गया। उस प्रदर्शनी में पृथक-पृथक पण्डालों में भिन्न-भिन्न वस्तुएँ जैसे किसी में वेद आदि, किसी में कृषि सम्बन्धित सामग्री तो किसी में अस्त्र-शस्त्र रखे गए। उन समस्त ब्राह्मणों का निरीक्षण किया गया कि सर्वप्रथम वे किस कक्ष में जाते है। क्षत्रिय स्वभावानुसार वे सभी सर्वप्रथम शस्त्रागार पहुँचे जिसे देख राजा एवं उनका पुत्र यह समझ गए कि वे निश्चित ही क्षत्रिय हैं, ब्राह्मण नहीं तथा उस अभेद्य लक्ष्य का भेदन करने वाले अर्जुन ही हो सकते हैं, कोई अन्य नहीं।

इसलिये सन्त ज्ञानेश्वर महाराज जी कहते हैं कैसे पहचाने, कैसे पहचान करें, हर व्यक्ति दूसरों से अलग है, हर व्यक्ति का स्वभाव अलग है, हर व्यक्ति की रुचि अलग है।

ज्ञानेश्वर महाराज इस सम्बन्ध में एक सुन्दर ओवी कहते हैं-

येरी जिया पराविया । रंभेहुनि बरविया ।
तिया काय कराविया । बाळकें तेणें ॥

अगा पाणियाहूनि बहुवें । तुपीं गुण कीर आहे ।
परी मीना काय होये । असणें तेथ ॥

जिस प्रकार एक बालक के पोषण के लिए उसकी माता ही चाहिये। वो दिखने में चाहे कुरुप ही क्यों ना हो उसके बालक के पोषण के लिए कोई सुन्दर रम्भा या अप्सरा माँ के समान पोषण नहीं कर सकती।

जैसे जल तथा घी के गुण भिन्न होते हैं। यदि मछली को जल से निकालकर घी में डाल दिया तो वह तड़प- तड़प कर मर जायेगी।

इसलिये अपनी क्षमता के अनुसार चयन करके कर्म करना ही परमात्मा की आराधना करना है इसलिये अपना सहज कर्म कभी छोड़ना नहीं चाहिये।

18.48

सहजं(ङ्) कर्म कौन्तेय, सदोषमपि न त्यजेत्।
सर्वारम्भा हि दोषेण, धूमेनाग्निरिवावृताः॥18.48॥

हे कुन्तीनन्दन ! दोषयुक्त होने पर भी सहज कर्म का त्याग नहीं करना चाहिये; क्योंकि सम्पूर्ण कर्म धुएँ से अग्नि की तरह (किसी न किसी) दोष से युक्त हैं।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं कि स्वभाव के अनुसार जो कार्य हमारे लिए विहित हो गया है, वो कर्म करने से कभी पाप नहीं लगता है। न ही बधिक(जल्लाद) को फाँसी पर लटकाने पर पाप लगता है न ही योद्धा को युद्ध भूमि में अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए किसी को मारने का पाप लगता है क्योंकि वह उसका कर्म है। अपना- अपना कर्तव्य-कर्म करने पर उसे पुण्य ही लगता है।

सन्त तुकाराम महाराज जी ने किराने की दुकान चलाते हुए, रविदास महाराज ने जूते सिलने का कार्य करते हुए भी परमात्मा को प्राप्त कर लिया। कोई भी कार्य छोटा नहीं होता। यदि स्वधर्म में दोष भी दिखाई दे तो भी उसका त्याग नहीं करना चाहिए।

जैसे दूसरों के जूते सिलने का कार्य यदि छोटा भी लगता है तो इस भाव से किया जाए कि ईश्वर की चरण पादुकाएँ मेरे पास आ

गई हैं तो फिर कार्य छोटा नहीं लगेगा। श्रीमद्भगवद्गीता हमारा दृष्टिकोण और विचार बदलने का कार्य करती है कि कोई भी कार्य छोटा या बड़ा नहीं होता। सभी को शास्त्र सम्मत स्वधर्म का पूर्ण निष्ठा से पालन करना चाहिए। सभी कर्मों में अलग-अलग प्रकार के दोष होते हैं। जिस प्रकार अग्नि के साथ धुआँ होता ही है, उसी प्रकार सभी कर्मों के साथ अलग-अलग प्रकार के दोष होते ही हैं। उन दोषों पर ध्यान देने की आवश्यकता नहीं है। श्रीमद्भगवद्गीता अनुभूति का शास्त्र है।

श्रीभगवान् कहते हैं यदि किसी सैनिक ने साधु महाराज का प्रवचन सुनकर अपना सैनिक का कर्म छोड़ दिया कि अब मैं बन्दूक नहीं चलाऊँगा, किसी को नहीं मारूँगा, ऐसे तो नहीं चलेगा।

अहिंसा ब्रह्म कर्म करने वालों के लिए है। क्षत्रिय कर्म करने वाले को तो जन्म से प्राप्त हुए कर्म के अनुसार ही कर्म करके उसकी आराधना होगी। इसलिये जन्म के साथ प्राप्त हुए धर्म का त्याग नहीं करना चाहिए। स्वधर्म को दोषपूर्ण जानकर उसका त्याग नहीं करना चाहिए। दूसरों को कर्म दूर के ढोल सुहावने जैसे ही प्रतीत होते हैं जैसे धुआँ अग्नि को ढक देता है।

18.49

असक्तबुद्धिः(स्) सर्वत्र, जितात्मा विगतस्पृहः।
नैष्कर्म्यसिद्धिं(म्) परमां(म्), सन्न्यासेनाधिगच्छति॥18.49॥

जिसकी बुद्धि सब जगह आसक्तिरहित है, जिसने शरीर को वश में कर रखा है, जो स्पृहारहित है (वह मनुष्य) सांख्ययोग के द्वारा सर्वश्रेष्ठ नैष्कर्म्य-सिद्धि को प्राप्त हो जाता है।

विवेचन- श्रीभगवान् आगे कहते हैं कि कर्म छोड़ना नैष्कर्म्य नहीं है। कर्म करते-करते कर्म के परिणामों से स्वयं को मुक्त करना ही नैष्कर्म्य है। हे अर्जुन! तुम युद्ध का कर्म छोड़कर मन से उस कर्म का ही चिन्तन करोगे तुम नैष्कर्म्यता तक नहीं पहुँच सकते।

जो व्यक्ति किसी भी कर्म में आसक्त नहीं होता है अर्थात् कर्म की लालसा या फल प्राप्ति की इच्छा को छोड़ते हुए अन्तःकरण पर नियन्त्रण करके रहता है या संसार में रहते हुए भी अलग रहता है। वह साङ्ख्य योग के द्वारा परमात्मा के साथ एकाकार होकर नैष्कर्म्य सिद्धि तक पहुँचता है।

18.50

सिद्धिं(म्) प्राप्तो यथा ब्रह्म, तथाप्नोति निबोध मे।
समासेनैव कौन्तेय, निष्ठा ज्ञानस्य या परा॥18.50॥

हे कौन्तेय ! सिद्धि (अन्तःकरण की शुद्धि) को प्राप्त हुआ साधक ब्रह्म को, जो कि ज्ञान की परा निष्ठा है, जिस प्रकार से प्राप्त होता है, उस प्रकार को (तुम) मुझसे संक्षेप में ही समझो।

विवेचन-उसी प्रकार जो व्यक्ति कर्मों के प्रति आसक्त नहीं होता है, वह अपने मन और इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर लेता है और यह समझता है कि मुझे कर्म करने का अवसर मिला यही मेरे लिए सबसे बड़ा फल है। कर्तव्य कर्म को करके मुझे ईश्वर की प्राप्ति हो जाये इसके अतिरिक्त और कोई इच्छा उसकी नहीं होती है। संन्यास अर्थात् ठीक से किया हुआ त्याग जिसने सारी अपेक्षाओं का त्याग कर दिया है, वह अन्तरङ्ग से संन्यासी हो जाता है। गृहस्थ होते हुए भी संन्यासी हो जाता है। वह व्यक्ति कुछ न करते हुए भी सब कुछ कर लेता है और सब कुछ करते हुए भी कुछ नहीं करता है। मैं कर रहा हूँ या अहम् भाव उसका नष्ट हो जाता है, जिस प्रकार परमात्मा कुछ नहीं करते हुए भी सब कुछ करते हैं। जब आत्म तत्त्व के द्वारा सभी कार्य हो रहा है, यह बात मनुष्य समझ लेता है तो वह नैष्कर्म्य सिद्धि को प्राप्त कर लेता है।
इसी के साथ विवेचन सम्पन्न हुआ और प्रश्नोत्तर सत्र आरम्भ हुआ।

विचार-मन्थन (प्रश्नोत्तर)-

प्रश्नकर्ता- ऋचा गोयल जी
प्रश्न - आपने विवेचन में बताया कि स्वकर्म के निर्वाह करने में पाप नहीं लगता। ये जो घर में कीड़े-मकोड़ों को हमें मारना पड़ता है क्या उसका पाप लगेगा ?
उत्तर - उसका पाप नहीं लगेगा क्योंकि ऐसा आप अपने घर के सदस्यों की, समाज की सुरक्षा हेतु कर रहे हैं। गृहिणी के स्वकर्म में यह आपका कर्तव्य है।

यदि कोई बधिक (ज़ल्लाद) अपने स्वकर्म के अंतर्गत न्यायालय के आदेशानुसार किसी दोषी को फाँसी देता है तो उसे पाप नहीं लगता।

यदि कोई सैनिक आक्रामक शत्रु का वध कर दे तो उसे पाप नहीं लगता पर यदि शत्रु का वध ना करे तो घोर पापी होता है।

प्रश्नकर्ता- किरण जी
प्रश्न - मैं अभी स्तर 4 (Level 4) में हूँ । मेरा स्तर 1(Level 1) का सर्टिफिकेट (certificate) अभी तक नहीं मिला है। कैसे प्राप्त किया जा सकता है?
उत्तर - अभी आप जिस ग्रुप में पढ़ रहे हैं, उस ग्रुप के फैकल्टी (faculty) से सम्पर्क कीजिये, आपको प्राप्त हो जायेगा।

।। ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ।।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!
Let’s come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीएॅफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||